पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
तत्त्व-चर्चा, ता. १३-०१-१९९०
प्रवचन नंबर ५६६a

गुरुदेव ने दृष्टि का विषय दे दिया कि दृष्टि के विषय में पर्याय नहीं है, पर्याय से भिन्न आत्मा है, प्रमत्त-अप्रमत से भिन्न केवल ज्ञायक आत्मा है। समझे? वहाँ तक तो सब आ गए हैं। वहाँ तक तो आया। परिणाम मेरे से भिन्न है इसलिए परिणाम का मैं कर्ता नहीं हूँ, भोक्ता भी नहीं हूँ, अकारक-अवेदक दृष्टि का विषय, उसका नाम द्रव्य का निश्चय। आप मेरा शब्द ख्याल में रखना (कि) पर्याय से भिन्न द्रव्य है इसलिए पर्याय का कर्ता-भोक्ता आत्मद्रव्य नहीं है। अकारक-अवेदक निष्क्रिय है आत्मा, क्रिया आत्मा में नहीं होती है, क्रिया पर्याय में होती है। क्रिया पर्याय में जरूर होती है। क्रिया बिना पर्याय नहीं होती है निष्क्रिय में कभी क्रिया नहीं होती है। ये दो द्रव्य और पर्याय की भिन्नता पहले ख्याल में लेना चाहिए। तो द्रव्यदृष्टि - दृष्टि का विषय द्रव्य दे दिया है गुरुदेव ने। अभी एक काम बाकी रह गया उसमें, वो गुरुदेव ने कह दिया है। बार-बार (गुरुदेव ने) कहा है मगर ध्यान खिंचा नहीं था, जगत का ध्यान खिंचा नहीं था। गुजराती समझते हो? ध्यान खिंचा नहीं था।

उसके ऊपर मेरा ध्यान केन्द्रित हुआ बहुत समय पहले, और गुरुदेव के जाने के बाद मैंने एक ही बात ली हाथ में उठाकर। वह वस्तु तो, द्रव्य कि (बात) तो गुरुदेव ने दे दिया। पर ये द्रव्य क्यों दृष्टि में आता नहीं था, अनुभव में क्यों नहीं आता है? पैंतालीस साल तक सुना फिर भी! पैंतालीस वर्ष सुना सबने कि मैं सामान्य चिन्मात्र ज्ञायकभाव मात्र हूँ, ऐसा द्रव्यस्वभाव प्रत्येक जीव का है, भगवान आत्मा है।

मगर भगवान आत्मा जानने में क्यों नहीं आता है? भगवान तो है सबके पास। जानने में क्यों नहीं आता है? यह बड़ी भूल थी और इस भूल (के) ऊपर ध्यान केन्द्रित मैंने किया। ये भूल कैसे मिटे, इसके लिए यह एक सूत्र दूसरा दिया कि, 'जाननेवाला जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता है', यह ज्ञान की पर्याय का निश्चय है। जैसे वह द्रव्य का निश्चय कि (द्रव्य) पर्याय से भिन्न है; और ज्ञान की पर्याय का निश्चय (यह) कि ज्ञान की पर्याय द्रव्य को जानती है, पर को नहीं - इसका नाम ज्ञान की पर्याय का निश्चय। लिखना हो तो लिख लो। Most important (सबसे महत्वपूर्ण) है यह बात। समझ गए? यह उतरता है (रिकॉर्डिंग) इसलिए कोई परेशानी नहीं। उतरती है।

अच्छा है! अब ये बात समयसार में कहाँ थी? क्योंकि समयसार चाहिए न? समयसार बिना तो कोई माने नहीं। यह बात सेटिका (खड़िया, चूना) की गाथा में है। सेटिका की गाथा जो हैं, खड़िया, सेटिका - उस गाथा में है। तो इस गाथा में स्पष्ट पाठ है कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या और ज्ञान की पर्याय का व्यवहार क्या? ज्ञान की पर्याय का निश्चय किसको कहते हैं और ज्ञान की पर्याय का व्यवहार किसको कहते हैं? तो सारा जगत ज्ञान की पर्याय के व्यवहार

में अटका हुआ है कि ज्ञान पर को जानता है। आत्मा पर को जानता है। पर को जानता है, पर को जानता है, यह ज्ञान की पर्याय का व्यवहार का पक्ष रह गया इसलिए ज्ञान पर को जानने में रुक गया। मेरा स्वभाव है, केवली भगवान लोकलोक को जानते हैं, मैं भी पर को जानूँ, जानना तो स्वभाव है। यह ज्ञान की पर्याय का व्यवहार खड़ा हो गया और व्यवहार का पक्ष अर्थात् ज्ञान आत्मा को जानता है, यह रह गया। प्रत्येक जीव का ज्ञान प्रत्येक समय आत्मा को जानता है। प्रत्येक जीव का ज्ञान प्रत्येक समय अपनी आत्मा को ही जानता है और पंचपरमेष्ठी को जानता नहीं है।

पंचपरमेष्ठी, अपने यहाँ बच्चों की और ये संजयभाई की बात नहीं लेते और अपना मोहनभाई समधी जानने में नहीं आते, ऐसा नहीं; पंचपरमेष्ठी मेरे ज्ञान में जानने में नहीं आते! मेरे गुरु उपकारी जानने में नहीं आते! मुझे समयसार की छठवीं गाथा जानने में नहीं आती! मुझे तो मेरा आत्मा, जाननहार जानने में आता है। यह ज्ञान की पर्याय का निश्चय जब हाथ में आवे तब ही अनुभव होता है।

ज्ञान की पर्याय के व्यवहार में जगत अटक गया है। या तो परप्रकाशक और या तो स्वपरप्रकाशक - ये भी व्यवहार है प्रमाण का व्यवहार। पर को जानता हूँ वह पर्याय का व्यवहार, असद्भूत व्यवहार है ये; ये तो असद्भूत व्यवहार है पर को जानता वह। और स्वपरप्रकाशक, यह प्रमाण का व्यवहार है (कि) स्व-पर दोनों को जाने। पर को न जाने और स्व-पर को (भी) न जाने; अकेला स्व को जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता, उसमें आत्मा का अनुभव होता है। और यह सेटिका की गाथा में है। सेटिका की गाथा तो इतनी अपूर्व है। टीकाकार ने बहुत अच्छी बात की है, मगर जो आप ध्यान देकर एक फक्त दो पंक्ति आप देखो, दो पंक्ति, दो पंक्ति सेटिका की दो गाथा मूल कुंदकुंद भगवान की दो हजार वर्ष पहले की। बेन बोलो! पहली लाइन सेटिका ज्ञायक नथी पर तणों ...

ज्यों सेटिका नहिं अन्यकी, है सेटिका बस सेटिका।

ये द्रष्टांत, अब सिद्धांत-

ज्ञायक नहीं त्यों अन्यका, ज्ञायक अहो ज्ञायक तथा॥३५६॥

ज्ञायक नथी पर तणो अर्थात् ज्ञायक पर को जानता नहीं, मूल में पड़ा है, मूल में! और इसका विस्तार भी टीकाकार ने किया है। सब कुछ समयसार में है। समझ गए? इस ज्ञान की पर्याय के व्यवहार में जगत अटक गया है इसलिए अंतर्मुख नहीं होता। आपकी श्रद्धा में तो है कि मैं पर को जानता हूँ, इसलिए जिसको तुमको जानने की श्रद्धा है वहीं उपयोग जायेगा न! आपने ज्ञेय तो स्थापित किया बाहर में, ज्ञान तो यहाँ रखा। ज्ञान यहाँ रखा और ज्ञेय को बाहर में स्थाप दिया तो कहें कि तुम्हारा उपयोग बाहर ही रहनेवाला है। अब आप ही ज्ञान हो और आप ही ज्ञेय हो। ज्ञेय को यहाँ स्थापित करो, ज्ञेय को स्थापित करो तो ज्ञान अंतर्मुख हो जाएगा, तभी काम होगा बस।

इस बात के लिए हमारा इतना विरोध हुआ, सोनगढ़ में किया जबरदस्त विरोध, पूरे भारत में विरोध। कोई मेरे साथ नहीं (था), अकेला मैं। समझ गए? ये बहनें यहाँ नहीं थीं। वहाँ

थीं शिकोहाबाद में। बहुत ऊहापोह हुई, भले ऊहापोह हो! (मगर) अनुभव की यही रीति है! बाकी कोई संयोग में 'मैं पर को जानता हूँ' (तो) पर तरफ ही आपका उपयोग जाएगा। एक बार तो आप पर को जानना बंद करो, पर्याय को जानना बंद करो।

इसके लिए फिर गाथा बाहर की (प्रवचनसार गाथा) ११४ (का) गुरुदेव का आधार। ये जहाँ पुस्तक बाहर प्रकाशित की - अद्वितीयचक्षु, पढ़ा है अद्वितीयचक्षु? (अद्वितीयचक्षु) बाहर पड़ी सोनगढ़ ठंडा पड़ गया, खलास! तीन-तीन ज्ञानी! एक कुन्दकुन्द भगवान, एक अमृतचन्द्र आचार्य और उसके ऊपर गुरुदेव के व्याख्यान, किसकी ताकत है न बोलने की? पर्यायार्थिकचक्षु सर्वथा बंद कर दे! पर को जानता ही नहीं, वह तो तेरे में आँख ही नहीं। पंचपरमेष्ठी को तो ज्ञान जानता ही नहीं। परंतु स्वयं में जो परिणाम उत्पन्न होते हैं उनको जानना बंद कर दे। और सामान्य को जानने पर और विशेष को नहीं जानता, तब अनुभव होता है। यह गाथा बाहर की, आधार कुदरती मिल गया मेरे को। सेटिका की गाथा का आधार तो था मेरे पास, परंतु ये विशेष आधार स्पष्ट (मिल गया)।

मुमुक्षु: गुरुदेव तो ऐसा बोलते थे कि स्व को जाने वही सही जाना है और पर को जाना वह जाना (ही) नहीं।

पू. लालचंदभाई: हाँ (बराबर)!

मुमुक्षु: जैसे आपने कहा कि मुद्दे की बात तो वही है, सही।

पू. लालचंदभाई: हाँ! वो ही सही है, अनुभव के लिए। बाद में अनुभव करने के बाद आत्मा को जानते-जानते लोकालोक जणित (जानने में आ) जाये। वो अलग बात है, उसका नाम व्यवहार है। पहले आत्मा को जानना भूल गया और पर को मैं जानता हूँ तो अज्ञान हो गया। उसका नाम ही अज्ञान है। दूसरा क्या है?

मुमुक्षु: यही तो हो रहा है, यही हो रहा है। यही गलती हो रही है।

पू. लालचंदभाई: यही हो रहा है। दुलीचन्दभाई! इस बात ... का मैंने आधार दिया न? दृष्टि का विषय तो गुरुदेव ने दिया है इसलिए उसमें तो कोई अभी (किसी को शंका नहीं)। यह तो जगह-जगह पर गुरुदेव (ने) दिया है और छठवीं गाथा में भी दिया है। पर यह एक है न, **सेटिका नहीं अन्यकी**, सेटिका दीवार को सफेद ही करती नहीं। अभी चूना (खड़ी) डब्बे में था और दीवार काली थी, वहाँ तक तो दोनों द्रव्य दिखते थे - एक दीवार और एक चूना। जब चूना डिब्बे में से खाली हुआ और पानी में मिलाकर ऐसे दीवार पर लगाया, दूसरे दिन पूछा दलीचंदभाई ये दीवार कैसी है? तो आपका उत्तर आयेगा कि दीवार सफेद है। दीवार सफेद है कि चूना सफेद है? (वो) भूल गया ...।

मुमुक्षु: ओहोहो हो!

पू. लालचंदभाई: यह तो ऐसी सीधी बात है न? कोई गँवार भी (बता) दे कि दीवार सफेद है कि चूना सफेद है? दीवार पर लगा है तब चूना सफेद है, दीवार तो जैसी है वैसी है।

मुमुक्षु: सही बात है!

पू. लालचंदभाई: सही बात है! ऐसे **ज्ञायक नहीं त्यों अन्यका**, ज्ञायक पर को जानता नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक है। ज्ञायक ज्ञायक को जानता है - ऐसा भी नहीं। ये दो पंक्ति (लाइन) में है। बाद में टीकाकार ने निकाला। समझे?

मुमुक्षु: ज्ञायक ज्ञायक को नहीं जानता है, ऐसा?

पू. लालचंदभाई: ज्ञायक ज्ञायक को जानता है, उसमें साध्य की सिद्धि नहीं है। ज्ञायक पर को तो जानता ही नहीं है, वो तो बात अलग है। आत्मा आत्मा को जानता है, ज्ञान आत्मा को जानता है, उसमें अनुभव नहीं होता है। ज्ञान आत्मा को जानता है, ज्ञान पर को तो जानता ही नहीं। ज्ञान पर को तो जानता नहीं; परंतु ज्ञान आत्मा को जानता है, इसमें अनुभव नहीं होता है (क्योंकि ये) भेद हुआ। ज्ञायक तो ज्ञायक है वो ज्ञान अंतर्मुख होकर, उस ज्ञान का नाम ज्ञायक हो गया, ज्ञान पर्याय नहीं रही, अभेदनय (से)।

मुमुक्षु: आपने कहा वो बात तो बहुत अच्छी है। उसका निर्णय, तत्त्व-निर्णय कैसे आवे?

पू. लालचंदभाई: बस! करो तब तो आवे। आपने (निर्णय) किया है कि मैं पर को जानता हूँ। आप, पर को मैं नहीं जानता हूँ (ऐसा निर्णय करो), ये आपका काम है कि मेरा है?

मुमुक्षु: निर्णय बदलना है?

पू. लालचंदभाई: हाँ! पहले निर्णय बदलता है, बाद में अनुभव होता है। सच्चा निर्णय ही नहीं है तो अनुभव कहाँ से होवे? निर्णय झूठा है, खोटा है, व्यवहार का पक्ष है। असद्भूत व्यवहार से शास्त्र की बात आते है (कि) 'आत्मा पर को जानता है', (वह) सद्भूत व्यवहार नहीं है। आत्मा आत्मा को जानता है (ये) सद्भूत व्यवहार है, निश्चय नहीं है। आत्मा पर को जानता है वह असद्भूत यानि झूठा व्यवहार है, क्योंकि आपके ज्ञान में प्रफुल्लभाई नहीं जानने में आते हैं, प्रफुल्लभाई संबंधी के ज्ञान को आप जानते हो, प्रफुल्लभाई को नहीं जानते हैं! ऐसी बात अंदर की है भैया, थोड़ा अभ्यास करो तो काम हो जाये। मगर प्रश्न अच्छा आपका था, short (संक्षेप) में बता दिया।

इसके लिए गुरुदेव (की) एक पुस्तक बाहर पड़ी (छपी) है, १३ व्याख्यानों की **अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय**। **अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय** जो गुजराती में बाहर पड़ी है, उसका अनुवाद भी हो गया है जयपुर से (**अध्यात्म रत्नत्रय**), मगर अनुवाद में थोड़ी कहीं-कहीं क्षति है। तो गुजराती यदि पढ़ सको तो गुजराती (पुस्तक) आपके घर में ही है, मनुभाई के घर में है, मनुभाई देंगे आपको पुस्तक। सारा जीवन पढ़ो! एक बार पढ़ो; पूरी समाप्त हो, दूसरे दिन (फिर) पहले पेज से पढ़ो। समाप्त हो गई पूरी, तीसरी बार पहले पेज से पढ़ो। सारी ज़िंदगी पढ़ा करो बस, एक पुस्तक बस है। उसमें ध्येय, ध्यान और ध्याता। ध्यान कैसे करें आत्मा का उसकी विधि अंदर है। उसमें सब है जो बात मैंने बताई, दो बात, द्रव्य का निश्चय और पर्याय का निश्चय और अनुभव है, सब तीन बातें उसमें हैं। बहुत फुर्सत चाहिए। फुर्सत तो है आपको क्योंकि आजीविका का साधन तो है। तो फिर प्रश्न कहाँ है?

मुमुक्षु: व्यापार भी नहीं करते ज्यादा अब। लड़के-लड़की दोनों बच्चों की शादी हो गयी।

पू. लालचंदभाई: बस! लड़का, लड़की दोनों? ठीक! आपके घर से (पत्नी) हैं?

मुमुक्षु: हाँ! हैं। बहन को भी बहुत अभ्यास है।

मुमुक्षु: गुरुदेव ने तो बहुत माल दिया है लेकिन आपने तो, थोड़े से रूप में माल बहुत भर दिया (है) आपने।

पू. लालचंदभाई: हम कहते हैं कि दूध है न, दूध, वो ले लिया दूध तो आपने। दो लीटर दूध ले लिया और उबाला, गरम किया। समझे? बाद में तपेली में रखा तो ठहर गया। मगर जाँवन डाले बिना दही नहीं जमेगा और ऐसा करने के बाद में घी निकलेगा। मक्खन के बाद में घी निकलेगा। तो ये जाँवन है। दूध तो आपके पास आ गया मगर जाँवन नहीं आपने डाला दूध में तो दूध ज्यादा टाइम (रखा) रहे तो फट जाता है। दूध का स्वाद (खराब हो जाएगा)। जल्दी जाँवन डाल दो अंदर में कि 'जाननहार जानने में आता है (वास्तव में) पर जानने में नहीं आता'। आहाहा! यहाँ वो था ना स्टीकर, अंदर होगा। वह पुस्तक देना भाई को।

मुमुक्षु: दुख से छूटने का उपाय और सुख प्राप्ति का उपाय यही है, बस।

पू. लालचंदभाई: यही है! दूसरा बिल्कुल नहीं है! आहाहा! बाकी सब बातें व्यवहार की, व्यवहार की बात तो अनेक आती हैं। अपनी बुद्धि कम है अपने पास, और समय भी कम है, आयुष्य कम है तो जल्दी काम कर लेना ठीक, बस। यह रेकॉर्ड हो गया, बहुत अच्छा! (ये पुस्तक) लेकर जाएँगे पर आप एक कॉपी रखना। हाँ! फिर ये ले जाएँगे, ले जाएँगे और आप रह जाओगे।

मुमुक्षु: ...

पू. लालचंदभाई: तो ठीक!

... निश्चयनय से द्रव्य का स्वरूप क्या है और ज्ञान की पर्याय का, निश्चयनय से ज्ञान का स्वरूप क्या है? पर को जानना, स्व-पर को जानना कि स्व को जानना? बस तीन बात हैं। ज्ञान की पर्याय में तीन बातें हैं। पर को जानते-जानते कितना टाइम चला गया? आपकी कितनी उम्र हुई?

मुमुक्षु: ५० साल की।

पू. लालचंदभाई: ५० साल की। अनुभव हुआ? पर को जानते-जानते अनुभव हुआ?

मुमुक्षु: नहीं।

पू. लालचंदभाई: प्रतिमा को खूब आपने जाना, दर्शन किया, पूजा की। हें? भगवान को जाना। भगवान को जानने से भी कुछ हुआ नहीं। ज्ञान का विषय यह (अंदर का) भगवान है। **जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता**। पहले मूल में, **मैं जाननहार हूँ और मैं करनेवाला नहीं हूँ**, ये द्रव्य का निश्चय आ गया, पहली बात। अभी **जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता**, इसमें ज्ञान की पर्याय अंतर्मुख हो जाती है, जाननहार हूँ बस। आहाहा! भव का अंत ऐसे होता है।

मुमुक्षु: करना सब छूट गया, अपना करना रह गया।

पू. लालचंदभाई: करना गया। अपना करना नहीं आया।

मुमुक्षु: जानना।

पू. लालचंदभाई: अपना जानना आया। हाँ! पर का करना छूट गया और मेरा काम करने का आ गया, ऐसा नहीं है, ये step (चरण) ही नहीं है। करने की बात ही नहीं है। पर का करना छूट गया, पर्याय का करना छूट गया और मैं जाननहार हूँ (ऐसा) जानने में आ गया बस। हो गया काम पूरा, बस।

पर्याय तो स्वयं होती है। पर्याय को आप क्यों करते हो? वह तो पहले बोल में आ गया। द्रव्य पर्याय से भिन्न है इसलिए पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं। ये ३२० गाथा में है। ये पुस्तक आपको मिलेगी न उसमें १३ व्याख्यान हैं। ९+३+१= १३। ९ व्याख्यान ३२० गाथा समयसार के, ३ व्याख्यान प्रवचनसार गाथा ११४ के, १ व्याख्यान २७१ कलश। १३ व्याख्यान! १३ पंथ, उसमें १३वाँ गुणस्थान आ जायेगा - ऐसा है।

मुमुक्षु: बिल्कुल! कल से चालू करूँगा।

पू. लालचंदभाई: पढ़ना, बार-बार पढ़ना, बार-बार पढ़ना।

मुमुक्षु: कल से नियम से चालू करूँगा।

पू. लालचंदभाई: बस! नियम से। देखो! यहाँ ऐसे होता है काम।

मुमुक्षु: नियम ले रहा हूँ आप के समक्ष।

पू. लालचंदभाई: बस! नियम से आधा घंटा, घंटा, आधा घंटा और ज्यादा समय मिले तो दो घंटा, तीन घंटा, वो अलग बात है। परंतु नियम से रोज daily एक व्याख्यान तो पढ़ना ही पढ़ना। और गुरुदेव का व्याख्यान है न, और किसी का शब्द नहीं है इसमें, उनकी टेप है। टेप ऊपर से अक्षर-अक्षर तीन बार चकासनी (चेक) किया। भाई ने किया, भाई ने किया, भाई ने किया। भाई ने पहले चेक कर लिया, बाकी (दूसरे) भी ने (ऐसे) तीन आदमी (ने किया)। एक शब्द (में भी) फेरफार नहीं। नहीं तो मेरा गला पकड़ लें सभी। हमको तो मालूम है सब।

द्रव्यलिंगी की भूल है यह, द्रव्यलिंगी की यह भूल है। ये भूल मोक्षमार्ग प्रकाशककर्ता ने बताई। द्रव्यलिंगी सम्यग्ज्ञान के लिए प्रवृत्ति करता है। सम्यग्ज्ञान कैसे प्रगट हो? उनको तो वही है, जंगल में हैं, दूसरा तो कुछ है नहीं। राजपाट छोड़कर, कंचन-कामिनी का त्याग है, नग्न दिगंबर मुनि हैं। समझ गए? परंतु अनुभव नहीं हुआ। क्या भूल रह गयी? भूल लिखी है उसमें, भूल बताई टोडरमलजी साहब ने। सम्यग्दृष्टि, अज्ञानी की, द्रव्यलिंगी की भूल को भी जान लेता है सम्यग्दृष्टि। द्रव्यलिंगी की भूल को जानता है।

ये लिखते हैं मोक्षमार्ग प्रकाशक में कि 'भगवान ने छहद्रव्य कहे हैं न उनको मैं जानता हूँ', वो भूल रह गयी। ये मिथ्यात्व है, व्यवहार नहीं है। सर्वज्ञ भगवान के कहे हुये छहद्रव्य, उसमें अनंत सिद्ध आ गए कि नहीं आ गए?

मुमुक्षु: आ गया।

पू. लालचंदभाई: अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय, साधु जीव में (सब) आ गए न। छहद्रव्य में

जीव एक द्रव्य है। बस सब आ गया, उसको मैं जानता हूँ। तो टोडरमलजी साहब कहते हैं, फरमाते हैं (कि) 'मगर मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, वो नहीं आया'। उसको (छहद्रव्य को) जो जाननेवाला वो मैं हूँ। वो (छहद्रव्य) तो मैं नहीं, वो तो मैं नहीं - उसको जाननेवाला मैं हूँ (ऐसा मानता है)। मगर मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, जाननेवाला हूँ, वो मैं हूँ वो भूल गया। ऐसी बात है।

समयसार में बहुत जगह पर है वो बात तो, मगर ध्यान नहीं जाता जीव का। यह तो एक जबरदस्त क्रांति आई। युगल जी साहब ने कहा, किस गाँव में कहा? 'नाम भी है और बदनाम भी हैं' देवलाली में। इसके पहले, पहली लाइन उसमें, शिविर में। 'लालचंदभाई का नाम भी है और बदनाम भी हैं'। मैंने कहा, बदनाम का अर्थ क्या? तो कहा कि सच्चेरूप में बदनाम हैं, खराबरूप में नहीं, ऐसा। इस matter (बात) के ऊपर (कि) 'आत्मा पर को जानता नहीं' ऐसा कहकर उन्होंने स्वयं ने कहा, इस बात के ऊपर लालचंदभाई का नाम भी है और बदनाम भी हैं। यानि इसमें प्रसिद्धि उनकी हुई। कौन माने? माने कौन कि 'मैं पर को जानता नहीं'? यह दीवार है, यह घड़ी है। घड़ी है, घड़ी को जानता है, स्वपरप्रकाशक है; इसमें क्या दोष है?

स्वपरप्रकाशक के भी तीन प्रकार हैं, स्वपरप्रकाशक के भी (तीन प्रकार हैं)। एक निगोद में स्वपरप्रकाशक है। बोलो! अनुभव हुआ उसको? क्या कहा मैंने? कि स्वपरप्रकाशक तो है वहाँ, निगोद में, एकेन्द्रीय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, प्रतिभास (तो उसको) होता है। ज्ञान में आत्मा का भी प्रतिभास होता है, रागादि, देहादि का (भी) प्रतिभास होता है; उसका नाम स्वपरप्रकाशक, उसमें अनुभव नहीं होता है। बाद में एक स्वपरप्रकाशक ऐसा है कि साधक अनुभव करके बाद बाहर में आता है, तो स्वपरप्रकाशक ज्ञान प्रगट होता है। और एक अंदर का स्वपरप्रकाशक अनुभव के काल में प्रगट होता है। तीन प्रकार हैं, स्वपरप्रकाशक के।

अंदर में, अंदर में स्वपरप्रकाशक क्या? कि ज्ञान ने ज्ञान को जाना, वो स्व और आनंद आया उसको जाना, उसका नाम पर। इस स्वपरप्रकाशक की बात किसी को मालूम नहीं है। वो (बाहर का) स्वपरप्रकाशक लेते हैं। अंदर का निश्चय से स्वपरप्रकाशक है, स्वपरप्रकाशक। और बाहर में, जब अनुभव के बाहर आता है तो स्व भी जानने में आता है, लोकालोक का प्रतिभास तो होता है। ज्ञेय ज्ञान में तो प्रतिभासित होते हैं तो स्वपरप्रकाशक व्यवहार हो गया। और एक स्वपरप्रकाशक अज्ञान है, निगोद में भी है। सभी मिथ्यादृष्टि के पास है स्वपरप्रकाशक। कार्य (की) सिद्धि हुई? स्वपरप्रकाशक, स्वपरप्रकाशक। अरे! स्वपरप्रकाशक सम्यग्ज्ञान का लक्षण ही नहीं है। असत् लक्षण है ऐसा पञ्चाध्यायी (पूर्वार्ध गाथा ५४२) में कहा है, असत् लक्षण। क्या कहना? किसको कहना? स्वप्रकाशक लक्षण से ही आत्मा लक्षगत होता है। स्वप्रकाशक लक्षण से ही आत्मा अनुभव में आता है। बाद में स्वपरप्रकाशक व्यवहार होता है, बाद में। निश्चय हो तो व्यवहार (होता है)। निश्चय बिना व्यवहार कैसे हो! बाद में स्वपरप्रकाशक को कहो तो कोई परेशानी नहीं।

मुमुक्षु: आत्मा आत्मा को ही जाने? बस!

पू. लालचंदभाई: ऐसा स्वभाव है उसका।

मुमक्षु: उसका स्वभाव है।

पू. लालचंदभाई: प्रकाश सूर्य को ही प्रसिद्ध करे, घट-पट को नहीं, मकान को नहीं प्रसिद्ध करता। सूर्य का प्रकाश मकान को प्रसिद्ध करता है। ऐसी एक घटना घटी।

रात का समय था। तो बालक ने पिताजी को कहा कि पिताजी! पापा जी! ये अँधेरा हो गया, मकान तो दिखता नहीं है। (पिता ने कहा) सुबह में दिखेगा। (सुबह होने की) राह देख। अँधेरा है तो नहीं दिखता है। सुबह में प्रकाश हुआ तो पिता ने पुत्र को पूछा कि प्रकाश हो गया है अभी, तेरे को क्या दिखता है? मकान दिखता है, रात को (तो) नहीं दिखता था। मकान ही दिखता है कि कुछ और दिखता है? कि नहीं मकान ही दिखता है। आहाहा! सारा मकान। कितनी भूल हो गयी? वो प्रकाश भी गया और प्रकाशक सूर्य भी गया, दोनों गए। द्रव्य-पर्याय दोनों ही उड़ गए, ऐसा है। तो ज्ञान भी गया और ज्ञायक भी गया, 'पर को जानता हूँ' उसमें। आहाहा! यह उदाहरण तो सीधा है न? बालक ने कहा सारा मकान दिखता है? आहाहा! मकान दिखता है कि कुछ और दिखता है? रात को मकान नहीं दिखता है। सुबह में मकान दिखा और मकान को प्रसिद्ध करनेवाला सूर्य गायब हो गया! दृष्टि में आया ही नहीं। 'व्यवहार से जानने में आता है', आपके अस्तित्व बिना उसको कौन जाने? आपका (आत्मा का) अस्तित्व चूक गया। यह बाहर ही बाहर घूमता है चौबीस घंटा, ऐसा है।

ये सब उसमें है। १३ व्याख्यान हैं न? उसमें विस्तार से गुरुदेव ने बहुत करुणा करके माल दिया है। पहले तो एक ही पुस्तक बाहर निकाली थी - अद्वितीयचक्षु, ११४ गाथा का। वो जरा पर को जानने के लिए तकलीफ हुई थी न इसलिए। बाद में विचार आया कि तीनों एक साथ में छपावें तो ठीक; ध्येय, ध्यान और ध्याता। ३२० गाथा है, ९ व्याख्यान ध्येय के हैं; और ११४ गाथा (में) ध्यान कैसे किया जाये आत्मा का उसकी विधि इसमें लिखी है, ध्यान की विधि; और जब आत्मा का ध्यान होता है तब आत्मा ध्याता हो जाता है। ध्येय और ध्यान की हुई एकता (उसमें) भेद नहीं दिखता है, यह ध्येय है और यह ध्यान है ऐसा भेद नहीं दिखता है; भेद है तो सही परंतु दिखता नहीं है, उसका नाम ध्याता है। बस! छहढाला में वो सब दिया है; ध्याता, ध्यान और ध्येय (ढाल ६, गाथा ९); ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय (ढाल ६, गाथा ८)। आहाहा! ये तो छहढाला तो कंठस्थ होगा बहन को। छहढाला की पाँचवी, छठवीं ढाल है न। हाँ! वो २७१ कलश है, उसमें ही है।

सब माल है (अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय में), प्रवचनसार उसमें है, समयसार है, नियमसार है, धवल है, महाधवल है, सब उसमें है। (सब) शास्त्रों का सार है, बारह अंग का सार है। वो विनोद आया था, वहाँ हिम्मतनगर, ज्ञानचंदजी का लड़का, उसने बताया कि अभी ...

... ज्ञान कहाँ रहा? ज्ञान तो आत्मा का था और पर के सन्मुख होकर '(मैं) पर को जानता हूँ' तो आत्मा का नाश हो गया ऐसा लिखा है सेटिका में। आत्मा का नाश! अपना अस्तित्व उड़ गया। ये खड़ी और चूना उसमें (डब्बा में) था, वहाँ तक तो दो पदार्थ थे। अभी दिवार कैसी है? कि सफेद। तो चूना गायब हो गया। मैं पर को जानता हूँ तो मैं जाननेवाला हूँ (वो) दृष्टि में से

निकल जाता है, गायब हो गया। वो बड़ी भूल है।

मुमुक्षु: यही भूल मिटाने के लिए तो हम आपके पास आये हैं।

पू. लालचंदभाई: बस! ये १३ व्याख्यानों का अध्ययन करो, चिंतन करो, बाद में आप निर्णय कर लो कि मेरा क्या स्वरूप है - द्रव्य का क्या स्वरूप है, पर्याय का क्या स्वरूप है। बस! दो ही बात हैं, ज्यादा तो हैं ही नहीं।

हमारे यहाँ कहने में आता है घी-खिचड़ी का (शब्द) दो, घी और खिचड़ी दो हैं। द्रव्य का निश्चय और पर्याय का निश्चय, बस निकालो। उसमें ही है, शास्त्र में है सब, गुरुदेव ने बताया। इसलिए गुरुदेव को ही हम आगे करते हैं, गुरुदेव ने बताया वो मैं बताता हूँ, मेरे घर की बात नहीं है। देखो! ये व्याख्यान, छपवाया। अभी नहीं बैठता है, कई (लोगों) को नहीं बैठता है। किसी-किसी को बैठ गया, बाकी नहीं बैठता है। क्या पर को नहीं जानता हूँ? घड़ी दिखती है अभी। कितने बजे आप देखो भैया। चार बजे हैं। अच्छा! शशिभाई कितना है बोलो? कि चार। प्रफुल्लभाई कितना? चार। दिखती है घड़ी? कि दिखती है। नहीं दिखती है? आहाहा! मगर आत्मा दिखता है कि नहीं? वो रह गयी बात! बैठना कठिन है, साधारण बात नहीं है। बात मैंने कह दी, आपकी समझ में आ गई, मगर अंदर में उतारना वो साधारण बात नहीं है, कठिन है। है तो सरल, अपनी बात है। मगर पक्ष है न व्यवहार का अनंतकाल का। पक्ष है, उसके सामने बलवान अनंतवीर्य चाहिए। सामने जगत पूरा आ जाये, शास्त्र लिखें कि आत्मा पर को जानता है। (तो कहे) कि, "नहीं! यह व्यवहारनय का वचन है। साहब! आपने हमें सिखाया है कि व्यवहारनय अभूतार्थ है, यह ११वीं गाथा में आपने कहा था हमें। हम वो apply (लागू) करते हैं। आप भले लिखते हो कि व्यवहारनय से पर को जानता है। इसका अर्थ क्या? कि (वह) व्यवहार अभूतार्थ, असत्यार्थ है। ज्ञान पर को जानता नहीं है (ऐसा) आपने सिखाया है।"

मुमुक्षु: ये जोर सही जोर है। ऐसा वाणी में जोर आना चाहिए। सही! बिल्कुल सही है।

पू. लालचंदभाई: कुन्दकुन्द भगवान ने सिखाया है ११वीं गाथा में। व्यवहार सभी ही अभूतार्थ है। पर को जानना व्यवहार है, ये असत्यार्थ और अभूतार्थ है। उसको आपने सच्चा माना। पर को जानता हूँ, सच्चा माना। कहाँ से आत्मा का अनुभव हो?

आपके वहाँ मंदिर बन गया न, मंदिर?

मुमुक्षु: गुरुदेव की हाथ से ही।

पू. लालचंदभाई: हाथ से ही, हा बस। बराबर!

मुमुक्षु: गुरुदेव पधारे थे।

पू. लालचंदभाई: तो भाई के गाँव से कितना दूर है? कितने किलोमीटर?

मुमुक्षु: ७० किलोमीटर।

...

पू. लालचंदभाई: आत्मा अकर्ता है - ऐसा ज्ञायक जानने में आता है; पर जानने में नहीं आता। पर जणित (जानने में आ) जाये वो अलग बात है। स्व को जानने के बाद लोकालोक भी

जणित जाएगा मगर जानेगा नहीं उसको। केवली लोकालोक को जानते नहीं हैं, जणित जाता है।

मुमुक्षु: साहिब, पहले तो परद्रव्य जानने में नहीं आता, वो पहले लेना।

पू. लालचंदभाई: हाँ! वह लेना।

मुमुक्षु: वो तो बाद में (जानने में) आता है। पीछे की बात को आगे करे तो ....

पू. लालचंदभाई: फिर मैंने निश्चयपूर्वक व्यवहार की बात की न? तो पहले निश्चय। गुरुदेव फरमाते हैं निश्चय बिना व्यवहार होता नहीं। अच्छा प्रश्न किया।

ऐसा (है) कोई हमने हमारे घर की उपजाई हुई, निकाली हुई बात नहीं (की)। है तो आत्मा की बात लेकिन संत कह गए हैं। समझ गए? अनुभवी दांडी पीटकर कह गए हैं। तो इस प्रकार का स्वाध्याय, आत्मा के लक्ष बिना का ही स्वाध्याय जीव करते हैं। आत्मा के लक्षपूर्वक का स्वाध्याय भी कोई विरला ही करता है। आत्मा के लक्षपूर्वक, अनुभव (के) पहले हो। हाँ!

स्वाध्याय तो सब करते हैं, जानने के लिए करते हैं। 'ज्ञान बढ़ता है'। ज्ञान नहीं बढ़ता है, ज्ञेय बढ़ गया, ज्ञान तो उत्पन्न ही नहीं हुआ! इंद्रियज्ञान ज्ञान नहीं है भैया, ज्ञेय है वो, नाशवान है। आज आया था दस प्रकार के प्राण नाशवान हैं। आया था? इंद्रियज्ञान नाशवान है, यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। ज्ञान अविनाशी है, वह आत्मा का स्वरूप है। ऐसा आया था सुबह में। आप बैठे थे? १५९ कलश।

मुमुक्षु: यह तो कुंदकुंदाचार्य देव की बात है, गुरुदेव की बात है। इसमें एक शब्द भी हेर-फेरवाली बात नहीं। गुरुदेव ने कहा वो (सब) सीमंधर भगवान की बात है।

पू. लालचंदभाई: ऐसा ही है। सीमंधर भगवान की, प्रभु की वाणी और गुरुदेव की वाणी में किंचित् मात्र भी फर्क नहीं है। वो आठ दिन रहे थे वहाँ, कुंदकुंदाचार्य। वहाँ से सुनकर (के) ये शास्त्र लिखे हैं। वो सही बात है। सूर्यकीर्ति भगवान होनेवाले हैं उसमें कोई शंका नहीं है, धातकी खंड में। चंपाबेन के ज्ञान में आया है, सही है। माने न माने वो तो स्वतंत्र है।

मुमुक्षु: कल के व्याख्यान में दृष्टांत था न? वह सुनते थे अभी हम लोग.....वहाँ आपने कहा था न (कि) दूसरा अभी बहुत ज्ञान में है, ख्याल में है, परंतु अभी कह सकते नहीं। लोग झेल नहीं पायेंगे। इसलिए पूछते थे ये क्या है?

पू. लालचंदभाई: वह (तो) गुरुदेव के ज्ञान में है परंतु बोले नहीं कुछ। अपने को बोला होता तो हमको खबर पड़ती।

मुमुक्षु: नहीं! आपके ज्ञान में है, ऐसा मेरे को कहना है।

पू. लालचंदभाई: मेरे ज्ञान का काम नहीं। गुरुदेव का कहो, गुरुदेव को आगे करो।

मुमुक्षु: इसलिए मैंने कहा भाई को पूछना।

मुमुक्षु: गुरुदेव ने तो आपको सब कहा है।

पू. लालचंदभाई: गुरुदेव की कृपादृष्टि थी।

मुमुक्षु: बहुत! बहुत! आपको तो! ..... बहुत कृपा थी।